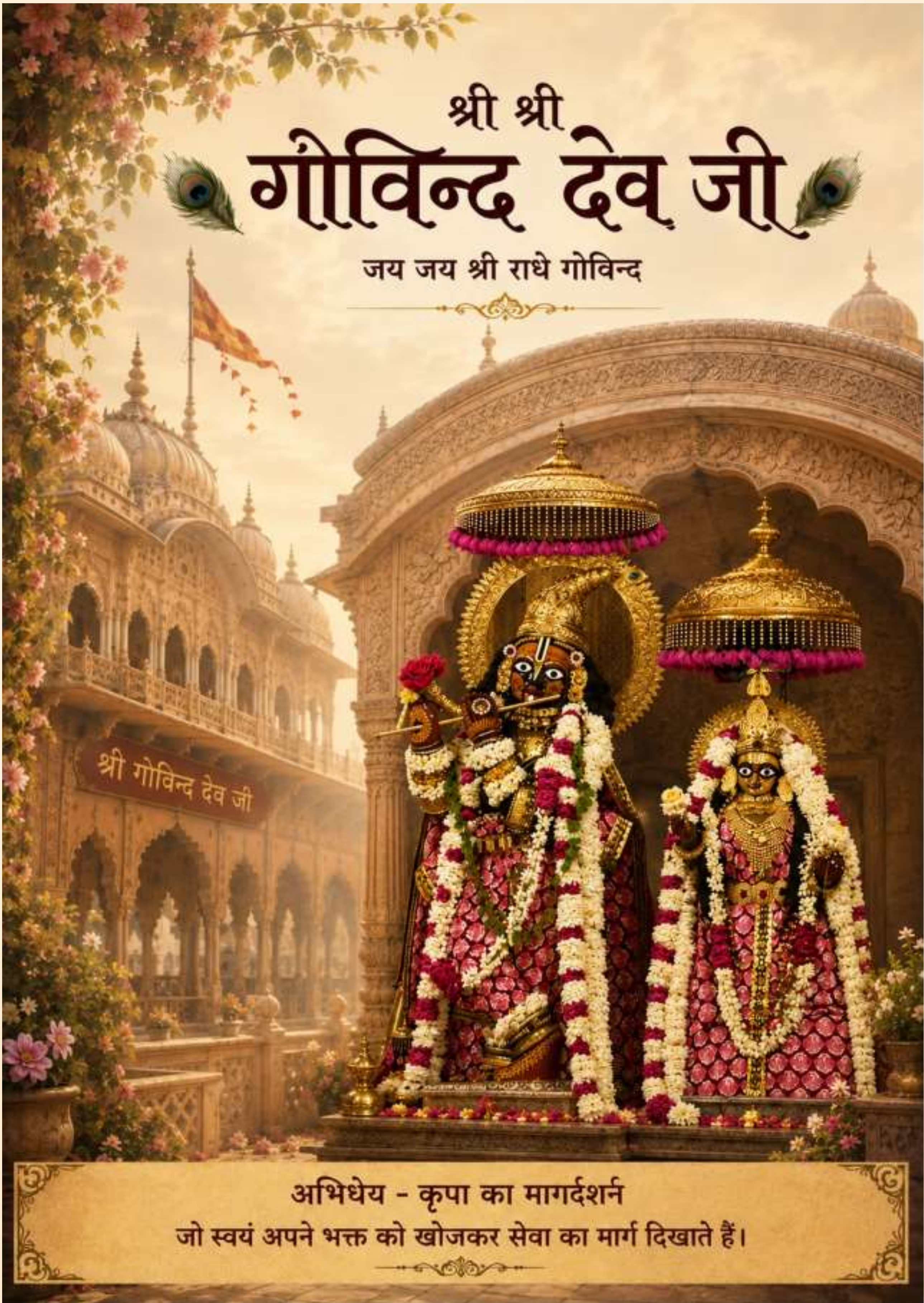
श्री श्री
गोविन्द देव जी
जय जय श्री राधे गोविन्द
श्री गोविन्द देव जी
अभिधेय - कृपा का मागर्दशर्न
जो स्वयं अपने भक्त को खोजकर सेवा का मार्ग दिखाते हैं।

श्री श्री गोविन्ददेव जी

अभिधेय — कृपा का मार्गदर्शन

जो स्वयं अपने भक्त को खोजकर सेवा का मार्ग दिखाते हैं

"भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।"
— भगवद्गीता १८.५५

भगवान केवल दर्शन देने के लिए प्रकट नहीं होते, वे हमें अपनी सेवा में लगाने के लिए प्रकट होते हैं।
भक्ति का वास्तविक आरम्भ भगवान को देखने से नहीं, बल्कि उनकी सेवा करने की इच्छा से होता है।
जब जीव का हृदय संसार की असंख्य इच्छाओं से थककर केवल भगवान को खोजने लगता है, तब भगवान भी मौन नहीं रहते। वे स्वयं उसका मार्गदर्शन करते हैं।
कभी गुरु बनकर...
कभी शास्त्र बनकर...
कभी भक्त बनकर...
और कभी स्वयं अपने दिव्य विग्रह के रूप में।

श्री श्री गोविन्ददेव जी का प्राकट्य इसी दिव्य कृपा का अद्भुत उदाहरण है।

उन्होंने केवल अपना दर्शन नहीं दिया—उन्होंने यह भी सिखाया कि भगवान को पाने के बाद उनकी प्रेममयी सेवा कैसे की जाए।
इसी कारण गौड़ीय वैष्णव सिद्धान्त में श्री गोविन्ददेव जी को "अभिधेय-विग्रह" कहा जाता है।

यदि श्री मदनमोहन जीव का भगवान से सम्बन्ध स्थापित करते हैं, तो श्री गोविन्ददेव उस सम्बन्ध को सेवा और साधना में परिवर्तित करना सिखाते हैं।

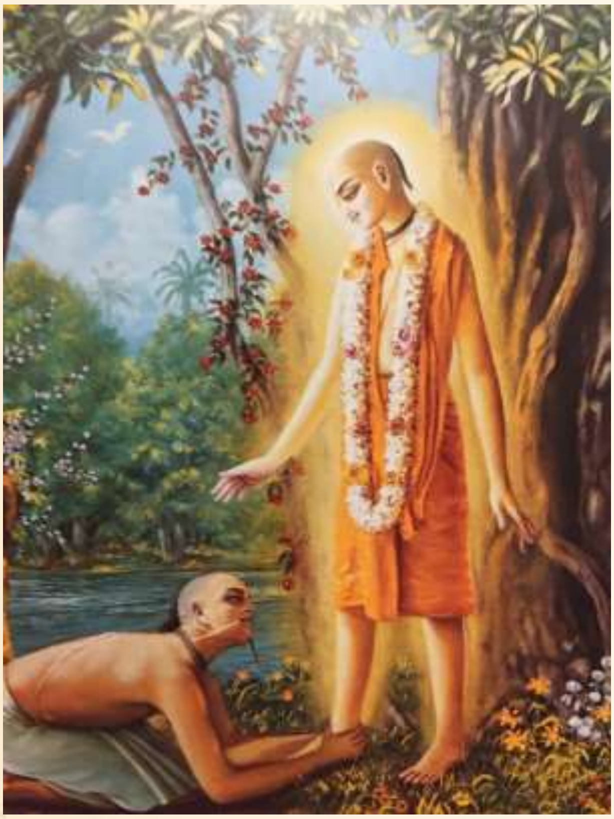

महाप्रभु का दिव्य आदेश: श्री चैतन्य महाप्रभु जब प्रयाग में श्रीरूप गोस्वामी से मिले, तब उन्होंने उन्हें केवल कुछ उपदेश नहीं दिए। उन्होंने अपने हृदय का मिशन सौंप दिया।

महाप्रभु चाहते थे कि संसार पुनः श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप, उनके धाम, उनकी लीलाओं और शुद्ध प्रेम-भक्ति को जाने। उस समय वृन्दावन की अधिकांश लीलास्थलियाँ समय के प्रवाह में लुप्त हो चुकी थीं। अनेक प्राचीन विग्रह आक्रमणों के भय से भूमि में सुरक्षित छिपा दिए गए थे।

महाप्रभु ने श्रीरूप गोस्वामी से कहा—
"वृन्दावन जाओ। वहाँ श्रीकृष्ण की लुप्त लीलाओं को पुनः प्रकाशित करो। उनके विग्रहों को खोजो, भक्ति के सिद्धान्तों को स्थापित करो और संसार को प्रेम-भक्ति का वास्तविक मार्ग प्रदान करो।"

यह केवल एक आदेश नहीं था। यह सम्पूर्ण गौड़ीय सम्प्रदाय की भावी नींव थी।
महाप्रभु जानते थे कि आने वाले युगों में करोड़ों लोग श्रीरूप गोस्वामी के माध्यम से ही श्रीकृष्ण को जानेंगे।
वृन्दावन की खोज: महाप्रभु की आज्ञा को अपने जीवन का प्राण मानकर श्रीरूप गोस्वामी वृन्दावन पहुँचे।
आज जैसा वृन्दावन हम देखते हैं, उस समय वैसा नहीं था।
चारों ओर घने वन... कदम्ब और तमाल के वृक्ष... यमुना की शांत धारा... रेतीले टीले...
और ब्रजवासी, जिनकी स्मृतियों में अभी भी श्रीकृष्ण की लीलाएँ जीवित थीं।

श्रीरूप गोस्वामी दिन-रात ब्रज की धूल में विचरण करते।
वे कभी यमुना तट पर बैठकर भजन करते...
कभी गोवर्धन की परिक्रमा करते...
कभी किसी वृद्ध ब्रजवासी से पूछते—

"क्या यहाँ किसी प्राचीन विग्रह का कोई स्मरण है?"
किन्तु उन्हें कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलता।
फिर भी उन्होंने अपनी खोज नहीं छोड़ी।
उनके लिए यह केवल एक ऐतिहासिक अभियान नहीं था।
वे अपने आराध्य प्रभु को खोज रहे थे।
प्रत्येक दिन उनकी प्रार्थना और भी गहरी होती जा रही थी—
"हे प्रभु! यदि आप चाहते हैं कि मैं आपकी सेवा करूँ, तो कृपा करके स्वयं अपना मार्ग दिखाइए।"

यही तो एक सच्चे भक्त का भाव है।
वह भगवान को अपने प्रयासों से प्राप्त नहीं करना चाहता।
वह उनकी कृपा की प्रतीक्षा करता है।
रहस्यमयी ब्रजवासी बालक : एक दिन श्रीरूप गोस्वामी यमुना तट पर बैठे अत्यन्त व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना कर रहे थे।

उनकी आँखों में विरह था।
हृदय में केवल एक ही पुकार—
"मेरे प्रभु! आप कहाँ हैं?"
उसी समय एक अत्यन्त मनोहर श्यामवर्ण ब्रजवासी बालक उनके पास आया।
उसके मुख पर अद्भुत तेज था।
उसकी मुस्कान में ऐसी मधुरता थी कि श्रीरूप गोस्वामी का सारा विषाद क्षणभर में दूर हो गया।

बालक ने सहज भाव से पूछा—
"बाबा! आप इतने उदास क्यों हैं?"

श्रीरूप गोस्वामी ने उत्तर दिया—
"मैं अपने प्रभु गोविन्ददेव को खोज रहा हूँ, पर उनका कोई पता नहीं मिल रहा।"

बालक मुस्कुराया।
फिर अत्यन्त सरलता से बोला—

"गोमा टीला पर प्रतिदिन एक गौ माता आती है। वह बिना किसी के दुहे एक विशेष स्थान पर स्वयं दूध बहा देती है। वहीं आपके गोविन्ददेव विराजमान हैं।"

इतना कहकर वह बालक वहाँ से चला गया।

कुछ ही क्षणों बाद जब श्रीरूप गोस्वामी ने इधर-उधर देखा—

वह बालक कहीं दिखाई नहीं दिया।

उसी क्षण उनके हृदय में एक दिव्य भाव जाग उठा।

वे समझ गए—

यह कोई साधारण बालक नहीं था।

स्वयं श्रीकृष्ण अपने भक्त का मार्गदर्शन करने आए थे।

अगले ही दिन श्रीरूप गोस्वामी अनेक ब्रजवासियों के साथ गोमा टीला पहुँचे।

जैसा उस बालक ने कहा था, ठीक वैसा ही दृश्य वहाँ उपस्थित था।

एक गौ माता प्रतिदिन उस स्थान पर आकर बिना किसी के दुहे स्वयं दूध बहा रही थी।

ब्रजवासियों ने अत्यन्त श्रद्धा से उस स्थान की खुदाई आरम्भ की।

कुछ ही समय में भूमि के भीतर से एक अनुपम, तेजोमय और अत्यन्त मनोहर विग्रह प्रकट हुआ।

उन्हें देखते ही श्रीरूप गोस्वामी की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी।

वर्षों की खोज...

असंख्य प्रार्थनाएँ...

और अनन्त प्रतीक्षा...

आज पूर्ण हो चुकी थी।

जिन्हें पाने की लालसा में वे ब्रज की धूल छान रहे थे,

आज वही प्रभु स्वयं उनके सामने प्रकट होकर खड़े थे।

गौड़ीय परम्परा के अनुसार यही वह श्री गोविन्ददेव विग्रह हैं, जिनकी स्थापना द्वापर युग के पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्री वज्रनाभ ने की थी।
समय के साथ आक्रमणों के भय से इस दिव्य विग्रह को सुरक्षित रखने के लिए भूमि में छिपा दिया गया था।
अब श्री चैतन्य महाप्रभु की इच्छा और श्रीरूप गोस्वामी की निष्कपट भक्ति के फलस्वरूप भगवान पुनः अपने भक्तों के बीच प्रकट हुए।

पूरा ब्रज आनन्द से भर उठा।
कीर्तन होने लगा...
घंटियाँ बज उठीं...
और प्रत्येक ब्रजवासी के हृदय में एक ही अनुभूति थी—
भगवान कभी खोते नहीं हैं।
वे केवल उस क्षण की प्रतीक्षा करते हैं, जब कोई निष्कपट भक्त उन्हें खोजने निकलता है।
जब हमारी खोज में अहंकार नहीं, बल्कि विनम्रता होती है...
जब हमारी जिज्ञासा में स्वार्थ नहीं, बल्कि सेवा की आकांक्षा होती है...
यही है—कृपा का मार्गदर्शन।

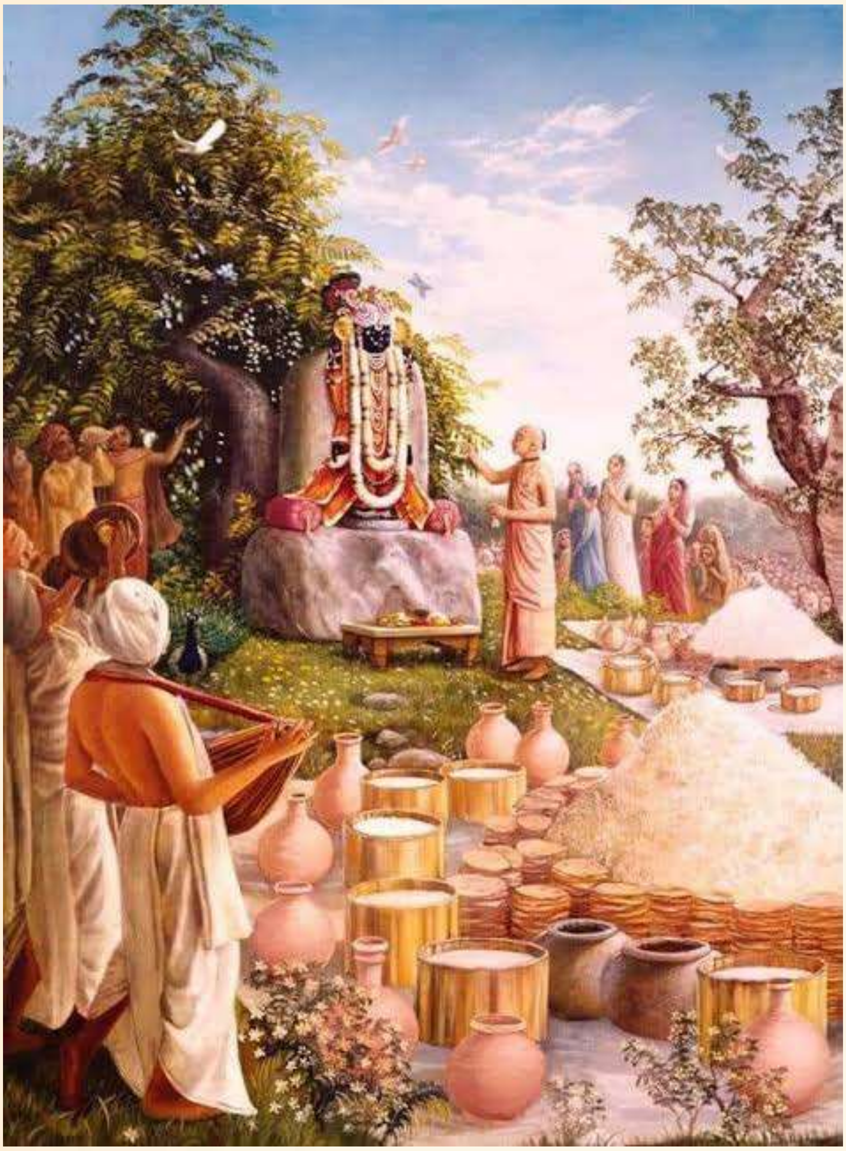

श्री गोविन्ददेव जी की सेवा :-अभिधेय — सम्बन्ध को सेवा में बदलने की कला

'गोविन्द' नाम का अर्थ

भगवान श्रीकृष्ण के असंख्य नाम हैं, और प्रत्येक नाम उनके किसी विशेष गुण, लीला या करुणा का परिचय देता है।

'गोविन्द' नाम भी अत्यन्त गहन आध्यात्मिक अर्थ रखता है।

शास्त्रों में 'गो' शब्द के अनेक अर्थ बताए गए हैं—

गौ (गाय)
इन्द्रियाँ
वेद
पृथ्वी
वाणी
तथा समस्त जीव

और 'विन्द' का अर्थ है—
आनन्द देने वाले, पालन करने वाले और तृप्त करने वाले।
इस प्रकार गोविन्द वह हैं—जो गौओं को आनन्द देते हैं।
जो हमारी चंचल इन्द्रियों को अपने दिव्य सौन्दर्य से अपनी ओर आकर्षित करते हैं।
जो सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन करते हैं।
जो वेदों के परम लक्ष्य हैं।
और जो अपने भक्तों के हृदय को प्रेम से परिपूर्ण कर देते हैं।

इसीलिए ब्रह्मसंहिता में भगवान की वन्दना की गई है—

गोविन्दम् आदिपुरुषं तमहं भजामि।

गौड़ीय वैष्णव दर्शन में तीन विग्रहों का अत्यन्त विशेष स्थान है—
श्री मदनमोहन — सम्बन्ध (संबन्ध)
श्री गोविन्ददेव — अभिधेय
श्री गोपीनाथ — प्रयोजन

श्रील जीव गोस्वामी और अन्य आचार्यों ने समझाया है कि आध्यात्मिक जीवन की यात्रा भी इन्हीं तीन चरणों से होकर गुजरती है।
पहला प्रश्न— मैं कौन हूँ? और मेरा भगवान से क्या सम्बन्ध है?
इसका उत्तर देते हैं—
श्री मदनमोहन।

दूसरा प्रश्न—
अब इस सम्बन्ध को कैसे जियूँ? भगवान की सेवा कैसे करूँ?
इसका उत्तर देते हैं—
श्री गोविन्ददेव।

और अन्तिम प्रश्न—
भक्ति का परम फल क्या है?
उसका उत्तर देते हैं—
श्री गोपीनाथ।

इसीलिए श्री गोविन्ददेव केवल दर्शन देने वाले भगवान नहीं हैं।
वे स्वयं भक्ति के आचार्य हैं।
वे अपने भक्तों को सेवा का मार्ग सिखाते हैं।
श्रीरूप गोस्वामी की प्रेममयी सेवा : श्री गोविन्ददेव के प्राकट्य के बाद श्रीरूप गोस्वामी ने अत्यन्त सरलता और प्रेम से उनकी सेवा प्रारम्भ की।
उनके पास न कोई राजसी मंदिर था...
न स्वर्ण के आभूषण...
न असंख्य सेवक...
केवल एक प्रेम से भरा हुआ हृदय।
वे स्वयं पुष्प चुनते...
तुलसी अर्पित करते...
भोग बनाते...
कीर्तन करते...
और घंटों बैठकर भगवान के श्रीमुख का दर्शन करते।
उनके लिए सेवा कोई दैनिक कर्तव्य नहीं थी।
वह उनके जीवन का श्वास थी।

इसी सेवा के बीच उन्होंने भक्ति-रसामृत-सिन्धु, उज्ज्वल-नीलमणि, विदग्ध-माधव, ललित-माधव जैसे अमूल्य ग्रन्थों की रचना की।
ऐसा कहा जाता है कि उनके प्रत्येक शब्द में श्री गोविन्ददेव की प्रेरणा प्रवाहित होती थी।
सेवा का वास्तविक अर्थ: हम प्रायः सोचते हैं कि सेवा का अर्थ केवल मंदिर में कोई कार्य करना है।
किन्तु श्रीरूप गोस्वामी का जीवन हमें सिखाता है कि सेवा केवल हाथों से नहीं होती—
सेवा हृदय से होती है।

जब भोजन भगवान के लिए बनाया जाए—
वह सेवा है।

जब ज्ञान भगवान की महिमा के लिए लिखा जाए—
वह सेवा है।

जब संगीत भगवान को प्रसन्न करने के लिए गाया जाए—
वह सेवा है।

जब जीवन का प्रत्येक क्षण भगवान की प्रसन्नता के लिए समर्पित हो जाए—
वही वास्तविक अभिधेय है।

श्रीराधारानी का वृन्दावन आगमन — एक मधुर परम्परा
श्री गोविन्ददेव जी की सेवा से जुड़ी एक अत्यंत भावपूर्ण परम्परा आज भी भक्तों के हृदय को आनंद और विस्मय से भर देती है।

कहा जाता है कि एक समय श्री गोविन्ददेव जी के समीप श्रीराधारानी का पृथक विग्रह विराजमान नहीं था। भक्तों की हार्दिक इच्छा थी कि वृन्दावन के इस युगल स्वरूप में श्रीराधारानी भी अपने प्रियतम के साथ विराजें।

मंदिर की प्राचीन परम्परा के अनुसार, उसी समय श्री जगन्नाथ पुरी धाम में एक दिव्य देवी-विग्रह की पूजा होती थी। अनेक भक्त उन्हें महालक्ष्मी के स्वरूप में आराधना करते थे। एक रात्रि पुरी के गजपति महाराज को स्वप्न में दिव्य आदेश प्राप्त हुआ। उस दिव्य स्वरूप ने कहा—

"मैं महालक्ष्मी नहीं, व्रज की स्वामिनी श्रीराधा हूँ। मेरा स्थान मेरे प्रियतम श्री गोविन्ददेव के समीप वृन्दावन में है। मुझे वहाँ पहुँचा दो।"

प्रातःकाल राजा ने इस स्वप्न को केवल स्वप्न नहीं, बल्कि ईश्वरीय आदेश मानकर श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया। राजकीय सम्मान के साथ उस दिव्य विग्रह को वृन्दावन भेजा गया। जब श्रीराधारानी का वह स्वरूप श्री गोविन्ददेव जी के वामभाग में प्रतिष्ठित हुआ, तब भक्तों ने अनुभव किया कि मानो युगल सरकार की सेवा पूर्णता को प्राप्त हो गई हो।

कालान्तर में जब उत्तर भारत के मंदिरों पर संकट आया और श्री गोविन्ददेव जी को सुरक्षित रूप से जयपुर ले जाया गया, तब श्रीराधारानी भी अपने प्रियतम के साथ इस यात्रा में सम्मिलित हुईं। आज भी जयपुर में युगल सरकार के दर्शन करते समय यह मधुर परम्परा स्मरण कराती है कि श्रीराधा और श्रीकृष्ण का प्रेम कभी अलग नहीं होता। जहाँ श्रीगोविन्द हैं, वहाँ श्रीराधा अवश्य हैं; और जहाँ श्रीराधा हैं, वहीं वृन्दावन का वास्तविक माधुर्य प्रकट होता है।

श्री गोविन्ददेव का मंदिर: समय के साथ श्री गोविन्ददेव की महिमा सम्पूर्ण भारत में फैलने लगी।
राजाओं, संतों और भक्तों का वृन्दावन आगमन बढ़ने लगा।
आमेर (वर्तमान जयपुर) के महान भक्त राजा मानसिंह जब वृन्दावन आए और श्री गोविन्ददेव के दर्शन किए, तो उनका हृदय भक्तिभाव से भर उठा।

उन्होंने निश्चय किया—

"मेरे प्रभु के लिए ऐसा मंदिर बने, जिसकी भव्यता संसार को यह बताए कि वृन्दावन का स्वामी कौन है।"

सोलहवीं शताब्दी के अन्त में लाल बलुआ पत्थर से एक अद्भुत सात-मंज़िला मंदिर का निर्माण हुआ।

उस समय यह उत्तर भारत के सबसे भव्य मंदिरों में से एक माना जाता था।

कहा जाता है कि इसकी वास्तुकला में भारतीय, राजस्थानी और तत्कालीन मुगल स्थापत्य की उत्कृष्ट शैली का अद्भुत समन्वय था।
दूर-दूर से आने वाले यात्री इसकी भव्यता देखकर विस्मित रह जाते थे।
यद्यपि आज उसका केवल एक भाग ही शेष है, फिर भी उसके अवशेष उस दिव्य वैभव की मौन गवाही देते है
मंदिर का वैभव नहीं, सेवा का वैभव
श्री गोविन्ददेव का मंदिर भव्य था।
किन्तु भगवान उस पत्थर के कारण प्रसन्न नहीं थे।

वे प्रसन्न थे—
क्योंकि उस मंदिर की प्रत्येक ईंट प्रेम से रखी गई थी।
भगवान को विशाल भवनों की आवश्यकता नहीं होती।
वे तो भक्त के प्रेम में निवास करते हैं।
भव्य मंदिर तभी सार्थक है, जब उसके भीतर विनम्र सेवा का भाव जीवित रहे।
हम सभी अपने जीवन में भगवान की सेवा करना चाहते हैं।
किन्तु अक्सर हम सोचते हैं—

"जब मेरे पास समय होगा..."

"जब मेरे पास धन होगा..."

"जब मैं योग्य बन जाऊँगा..."

श्री गोविन्ददेव हमें सिखाते हैं—
सेवा का आरम्भ परिस्थितियों से नहीं,
समर्पण से होता है।
भगवान हमारे साधनों की प्रतीक्षा नहीं करते।
वे हमारे हृदय की प्रतीक्षा करते हैं।
जिस दिन हम अपने जीवन को उनकी प्रसन्नता के लिए जीना आरम्भ कर देते हैं,
उसी दिन से हमारा जीवन भी अभिधेय बन जाता है।
भगवान को खोजने से भी अधिक महत्वपूर्ण है—
ऐसा जीवन जीना, जिसे देखकर भगवान स्वयं कहें—

"यह मेरा सेवक है।"

श्री गोविन्ददेव जी की रक्षा
जब भगवान ने अपने भक्तों के प्रेम की रक्षा के लिए यात्रा की

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वृन्दावन पुनः भक्ति का जीवंत केन्द्र बन चुका था।श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेश से षड्गोस्वामियों ने ब्रज की लुप्त लीलास्थलियों को पुनः प्रकट किया था। श्री मदनमोहन, श्री गोविन्ददेव, श्री गोपीनाथ, श्री राधारमण तथा अन्य दिव्य विग्रहों की सेवा अत्यंत श्रद्धा और वैभव के साथ होने लगी। देश के विभिन्न भागों से राजा, संत, विद्वान और असंख्य भक्त वृन्दावन आने लगे। सम्पूर्ण ब्रजभूमि पुनः हरिनाम, कीर्तन और भक्ति से गुंजायमान हो उठी।

किन्तु इतिहास ने एक कठिन मोड़ लिया।औरंगज़ेब के शासनकाल में उत्तर भारत के अनेक प्राचीन मंदिरों पर संकट आने लगा। सन् १६६९ ईस्वी में अनेक प्रमुख मंदिरों को ध्वस्त करने के आदेश दिए गए। वृन्दावन भी इस संकट से अछूता नहीं रहा।

उस समय भक्तों के सामने सबसे बड़ी चिंता मंदिरों की नहीं थी।
उनकी सबसे बड़ी चिंता थी—
"हम अपने प्रभु की अखण्ड सेवा को कैसे सुरक्षित रखें?"
भगवान की रक्षा नहीं, सेवा की रक्षा
भगवान सर्वशक्तिमान हैं। सम्पूर्ण जगत की रक्षा करने वाले प्रभु को किसी की रक्षा की आवश्यकता नहीं होती।
किन्तु प्रेम का स्वभाव ही कुछ और है।
माता अपने बच्चे की रक्षा करती है।
यशोदा मैया कृष्ण को नज़र से बचाने के लिए काजल लगाती हैं।
गोपियाँ उनके चरणों में काँटा न लगे, इसकी चिंता करती हैं।
इसी प्रकार भक्त भगवान की रक्षा नहीं करता, बल्कि अपनी सेवा की रक्षा करता है।
गौड़ीय आचार्यो ने समझाया है कि विग्रह केवल पत्थर या धातु की प्रतिमा नहीं हैं। वे स्वयं भगवान का साक्षात् अर्चा-अवतार हैं, जिनकी सेवा का सौभाग्य भक्तों को प्राप्त होता है।
इसी सेवा की निरन्तरता बनाए रखने के लिए उस समय मंदिर के सेवायतों और राजपूत संरक्षकों ने भगवान के मूल विग्रह को सुरक्षित स्थान पर ले जाने का निर्णय लिया।
ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार श्री गोविन्ददेव जी के मूल विग्रह को वृन्दावन से अत्यंत श्रद्धा और सावधान के साथ बाहर ले जाया गया।
इस कार्य में मंदिर के सेवायतों को आमेर (वर्तमान जयपुर) के कछवाहा राजवंश का संरक्षण प्राप्त था।

यह कोई पलायन नहीं था।
यह सेवा की रक्षा का प्रयास था।
जब भगवान का विग्रह वृन्दावन से बाहर ले जाया जा रहा था, तब अनेक भक्तों की आँखें अश्रुपूरित थीं।
जिस प्रभु के दर्शन प्रतिदिन उनके जीवन का आधार थे, आज वे ब्रजभूमि छोड़ रहे थे।
किन्तु उनके हृदय में एक गहरा विश्वास भी था—
"जहाँ हमारे गोविन्द रहेंगे, वहीं वृन्दावन बस जाएगा।"

कामवन से जयपुर तक
श्री गोविन्ददेव जी को तत्काल सीधे जयपुर नहीं ले जाया गया।
यात्रा के दौरान वे कुछ समय तक ब्रजमण्डल के कामवन तथा अन्य सुरक्षित स्थानों में विराजमान रहे।
बाद में परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर उन्हें आमेर राज्य ले जाया गया।
जब महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने जयपुर नगर की स्थापना की, तब उन्होंने भगवान श्री गोविन्ददेव जी को अत्यंत सम्मानपूर्वक नगर के मध्य प्रतिष्ठित किया।
आज भी जयपुर के राजमहल के समीप स्थित श्री गोविन्ददेव जी का मंदिर राजस्थान के सबसे प्रमुख वैष्णव तीर्थों में गिना जाता है।

राजपरिवार ने कभी स्वयं को राज्य का स्वामी नहीं माना।
वे भगवान श्री गोविन्ददेव जी को ही वास्तविक अधिपति मानते रहे और स्वयं को उनका सेवक समझते रहे।
यह परंपरा आज भी श्रद्धापूर्वक निभाई जाती है।

वृन्दावन आज भी उनका है

यद्यपि मूल विग्रह आज जयपुर में विराजमान हैं, किन्तु वृन्दावन कभी उनसे रिक्त नहीं हुआ। वृन्दावन स्थित प्राचीन गोविन्ददेव मंदिर में आज भी उनके प्रतिनिधि (प्रतिभू) विग्रह की सेवा उसी प्रेम, श्रद्धा और वैष्णव परंपरा के साथ निरंतर चल रही है। आज भी जब कोई भक्त उस भव्य मंदिर के अवशेषों के सामने खड़ा होता है, तो उसे केवल लाल पत्थरों की इमारत दिखाई नहीं देती।

उसे श्रीरूप गोस्वामी की तपस्या दिखाई देती है।

उसे गोमा टीला का वह चमत्कार स्मरण आता है।

उसे वह क्षण याद आता है जब भगवान स्वयं अपने भक्त के सामने प्रकट हुए थे।

श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ने बार-बार इस बात पर बल दिया कि हमारा सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन "रूपानुग" बनने में है—अर्थात् श्रीरूप गोस्वामी के चरणचिह्नों का अनुसरण करना।

और जहाँ श्रीरूप गोस्वामी हैं, वहाँ उनके आराध्य श्री गोविन्ददेव भी हैं।

इस प्रकार श्री गोविन्ददेव केवल एक ऐतिहासिक विग्रह नहीं हैं।

वे सम्पूर्ण रूपानुग गौड़ीय परम्परा के हृदय हैं।

वे हमें सिखाते हैं कि भगवान की कृपा केवल दर्शन तक सीमित नहीं है।

वह हमें सेवा, साधना और प्रेम के मार्ग पर चलना भी सिखाती है।

हमारे जीवन के लिए संदेश

हम सब भगवान को पाना चाहते हैं।

किन्तु क्या हम उनकी सेवा भी करना चाहते हैं?

श्री गोविन्ददेव जी हमें स्मरण कराते हैं कि भक्ति केवल मंदिर जाकर दर्शन कर लेने का नाम नहीं है।

भक्ति का अर्थ है—

अपने जीवन का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कर्म और प्रत्येक श्वास भगवान की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर देना।

जब सेवा हमारा स्वभाव बन जाती है, तब भगवान स्वयं हमारे जीवन का संचालन करने लगते हैं।

"भगवान को पाने का सबसे सरल मार्ग है—स्वयं को उनकी सेवा में समर्पित कर देना।"

"जहाँ सेवा है, वहीं गोविन्द हैं।"

शास्त्र प्रमाण

भगवद्गीता १८.५५
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

"केवल भक्ति के द्वारा ही मुझे यथार्थ रूप में जाना जा सकता है। और इस प्रकार मुझे जानकर भक्त मेरे नित्य धाम को प्राप्त करता है।"

श्रृंखला का संदेश

अभिधेय — कृपा का मार्गदर्शन

श्री श्री गोविन्ददेव जी हमें सिखाते हैं कि भगवान केवल हमारे आराध्य नहीं, हमारे मार्गदर्शक भी हैं। वे हमें अपने चरणों तक बुलाते हैं, सेवा का मार्ग सिखाते हैं और जब हम प्रेमपूर्वक समर्पित हो जाते हैं, तब हमारे जीवन को भी अपनी दिव्य लीला का एक भाग बना लेते हैं।

अंतिम प्रार्थना

हे श्री गोविन्ददेव!

जैसे आपने श्रीरूप गोस्वामी को स्वयं अपना मार्ग दिखाया, वैसे ही हमारे जीवन से भी अज्ञान का अंधकार दूर कीजिए।

हमें ऐसा हृदय दीजिए जो केवल आपके दर्शन का ही नहीं, आपकी सेवा का भी प्यासा हो।

हमारा प्रत्येक विचार, प्रत्येक कर्म और प्रत्येक श्वास आपके चरणों की सेवा में समर्पित हो जाए।

यही हमारे जीवन की सबसे बड़ी सिद्धि है।

श्री गोविन्ददेव जी के दिव्य रहस्य

क्या आप जानते हैं?

• गौड़ीय वैष्णव परम्परा के अनुसार श्री गोविन्ददेव जी का मूल विग्रह द्वापर युग के पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र श्री वज्रनाभ द्वारा स्थापित तीन प्रमुख विग्रहों में से एक है।

• श्रीरूप गोस्वामी ने भगवान को अपनी बुद्धि से नहीं, बल्कि अपनी विनम्र प्रार्थना और भगवान की कृपा से प्राप्त किया।

• जिस स्थान पर श्री गोविन्ददेव जी प्रकट हुए, उसे आज गोमा टीला के नाम से जाना जाता है।

• राजा मानसिंह द्वारा निर्मित सात-मंज़िला मंदिर अपने समय की भारत की सबसे अद्भुत धार्मिक स्थापत्य कृतियों में गिना जाता था।

• आज मूल विग्रह जयपुर में विराजमान हैं, जबकि वृन्दावन में उनके प्रतिनिधि (प्रतिभू) विग्रह की नित्य सेवा होती है।

• गौड़ीय सिद्धान्त में श्री गोविन्ददेव जी अभिधेय के अधिष्ठाता हैं—अर्थात् वे भगवान जो हमें प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना सिखाते हैं।

क्या आप जानते हैं?जब श्री गोविन्ददेव जी ने स्वयं अपना भाष्य लिखवाया

भगवान केवल अपने भक्तों की ही रक्षा नहीं करते…

वे समय आने पर अपने सिद्धान्त और अपनी परम्परा की भी रक्षा करते हैं।

ऐसी ही एक अद्भुत लीला श्री श्री गोविन्ददेव जी की सेवा से जुड़ी है।

जब गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाया गया और वेदान्त-सूत्र पर भाष्य प्रस्तुत करने की चुनौती दी गई, तब श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अपने शिष्य श्री बलदेव विद्याभूषण को जयपुर भेजा।

श्री बलदेव विद्याभूषण ने किसी विद्वान के अभिमान से नहीं, बल्कि एक विनीत सेवक की भाँति श्री श्री गोविन्ददेव जी के चरणों में प्रार्थना की।

उस रात्रि श्री गोविन्ददेव जी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिए और आश्वासन दिया—

“तुम लिखो… मैं स्वयं तुम्हें बताऊँगा कि क्या लिखना है।”

भगवान की कृपा से कुछ ही दिनों में गोविन्द-भाष्य की रचना पूर्ण हुई। जब वह भाष्य विद्वानों की सभा में प्रस्तुत किया गया, तो सभी आपत्तियाँ स्वतः शांत हो गईं और गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय को एक प्रामाणिक वैष्णव परम्परा के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

आज भी गोविन्द-भाष्य केवल एक महान दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है…

वह इस सत्य का अमर प्रमाण है कि जब कोई भक्त सम्पूर्ण समर्पण के साथ भगवान की शरण ग्रहण करता है, तब भगवान स्वयं उसके माध्यम से अपने सिद्धान्त, अपने भक्तों और अपने मिशन की रक्षा करते हैं.
यदि आज श्री गोविन्ददेव जी हमसे कुछ कहते…

“तुम मुझे खोजने की चिंता मत करो।

अपने जीवन को मेरी सेवा के योग्य बना लो।

जब तुम्हारे हृदय में निष्कपट सेवा की इच्छा जागेगी,

मैं स्वयं तुम्हें अपने पास ले आऊँगा।"

ध्यान **(Meditation)**

कुछ क्षण अपनी आँखें बंद कीजिए।

कल्पना कीजिए—

आप वृन्दावन के गोमा टीला पर खड़े हैं।

सुबह का समय है।

यमुना की मंद-मंद हवा बह रही है।

एक गौ माता शांत भाव से आकर भूमि पर अपना दूध अर्पित कर रही है।

भूमि के भीतर भगवान विराजमान हैं...

और श्रीरूप गोस्वामी folded hands के साथ खड़े हैं।

कुछ ही क्षणों बाद भगवान स्वयं प्रकट होते हैं।

अब स्वयं को उस भीड़ में खड़ा अनुभव कीजिए...

और मन ही मन प्रार्थना कीजिए—

"हे गोविन्द! जैसे आपने श्रीरूप गोस्वामी को अपना मार्ग दिखाया, वैसे ही मेरे जीवन का भी मार्गदर्शन कीजिए।"

हमारे जीवन के लिए प्रेरणा

आज हममें से अधिकांश लोग भगवान से आशीर्वाद चाहते हैं।

किन्तु श्री गोविन्ददेव हमें एक उच्चतर प्रार्थना सिखाते हैं।

केवल इतना मत कहिए—

"भगवान, मेरी समस्या दूर कर दीजिए।"

इसके स्थान पर कहिए—

"भगवान, मुझे ऐसा बना दीजिए कि मैं आपकी प्रसन्नता के लिए जी सकूँ।"

जब हमारी प्राथमिकता बदलती है,

तब भगवान की कृपा भी नए रूप में प्रकट होने लगती है।

प्रार्थना

हे श्री गोविन्ददेव!

मेरे जीवन का प्रत्येक दिन आपकी सेवा में बीते।

मेरे विचार पवित्र हों।

मेरे शब्द मधुर हों।

मेरे कर्म आपके चरणों में अर्पित हों।

मुझे ऐसा हृदय दीजिए जो संसार की नहीं,

केवल आपकी प्रसन्नता की खोज करे।

श्रीरूप गोस्वामी की भाँति मुझे भी आपकी सेवा का एक छोटा-सा पात्र बना लीजिए।

आज का संकल्प

आज मैं भगवान से कुछ माँगने नहीं, बल्कि स्वयं को उनकी सेवा में अर्पित करने का प्रयास करूँगा।

श्रृंखला का संदेश

अभिधेय — कृपा का मार्गदर्शन

श्री श्री गोविन्ददेव जी हमें स्मरण कराते हैं कि भगवान तक पहुँचने का मार्ग केवल ज्ञान या प्रयास से नहीं खुलता। जब हृदय में निष्कपट सेवा की प्यास जागती है, तब भगवान स्वयं गुरु, शास्त्र, भक्त और अपने दिव्य विग्रह के माध्यम से हमारा हाथ पकड़कर हमें अपने चरणों तक ले जाते हैं।

Śrī Śrī Govindadeva Ji

Abhidheya — The Lord Who Guides Us to Loving Service

“Bhaktyā mām abhijānāti yāvān yaś cāsmi tattvataḥ.”

“Only through devotional service can one truly understand Me as I am.”
— Bhagavad-gītā 18.55

The Lord does not manifest merely so that we may behold Him. He appears to engage us in His loving service. The true beginning of bhakti is not simply seeing the Lord—it is awakening the desire to serve Him.

When the heart of the conditioned soul grows weary of chasing countless worldly desires and sincerely begins to seek only the Supreme Lord, the Lord does not remain silent. Out of His boundless mercy, He personally guides that soul. Sometimes He comes as the spiritual master, sometimes as the revealed scriptures, sometimes through His devotees, and sometimes He appears directly in His divine Deity form.

The appearance of Śrī Śrī Govindadeva Ji is one of the most beautiful examples of this divine guidance. He did not reveal Himself simply to grant darśana; He also taught His devotees how to lovingly serve Him after finding Him. For this reason, Vaiṣṇava theology reveres Śrī Govindadeva as the Abhidheya-vigraha—the Deity who teaches the practice of devotional service. If Śrī Madana-mohana establishes our eternal relationship with the Lord (*sambandha*), Śrī Govindadeva teaches us how to live that relationship through loving service and spiritual practice (*abhidheya*).

Mahāprabhu’s Divine Mission

When Śrī Caitanya Mahāprabhu met Śrī Rūpa Gosvāmī at Prayāga, He did far more than offer a few spiritual instructions. He entrusted him with the mission of His own heart.

Mahāprabhu desired that the world once again understand the true identity of Śrī Kṛṣṇa, His eternal abode, His divine pastimes, and the pure path of prema-bhakti. At that time, most of Vṛndāvana’s sacred pastime places had disappeared beneath the passage of time, and many ancient Deities had been hidden underground to protect them from invasions.

He instructed Śrī Rūpa Gosvāmī:

“Go to Vṛndāvana. Rediscover the lost places of Kṛṣṇa’s pastimes. Find His hidden Deities, establish the principles of devotion, and reveal the true path of divine love to the world.”

This was not merely an instruction—it became the very foundation of the Gauḍīya Vaiṣṇava tradition. Mahāprabhu knew that countless generations would come to know Śrī Kṛṣṇa through the teachings and writings of Śrī Rūpa Gosvāmī.

The Search for Govindadeva

Accepting Mahāprabhu’s order as the very purpose of his life, Śrī Rūpa Gosvāmī journeyed to Vṛndāvana.

The Vṛndāvana of that time was very different from the one we see today. Dense forests stretched in every direction. Kadamba and tamāla trees, shaded the land. The gentle Yamunā flowed peacefully, while sandy hillocks dotted the landscape. Vrajavāsīs still carried living memories of Kṛṣṇa’s pastimes in their hearts.
Day and night, Śrī Rūpa Gosvāmī wandered through the sacred dust of Vraja.

Sometimes he sat on the banks of the Yamunā absorbed in bhajana.

Sometimes he circumambulated Govardhana Hill.

Sometimes he humbly approached elderly residents of Vraja and asked,

“Do you remember any ancient Deity hidden in this place?”

Yet no one could give him a definite answer.

Still, he never abandoned his search.

For him, this was not an archaeological expedition.

He was searching for his beloved Lord.

With each passing day, his prayers grew deeper:

“O Lord! If it is Your desire that I serve You, then please reveal Yourself and show me the way.”

Such is the mood of a true devotee.

A devotee does not believe he can attain the Lord through personal effort alone.

He patiently waits for the Lord's mercy.

The Mysterious Cowherd Boy

One day, while Śrī Rūpa Gosvāmī sat on the bank of the Yamunā praying intensely to the Lord, his heart overflowed with separation.

His only cry was:

"My Lord… where are You?"

Just then, a charming dark-complexioned cowherd boy from Vraja approached him.

His face radiated extraordinary beauty, and His smile instantly dispelled all of Śrī Rūpa Gosvāmī's sorrow.

The boy gently asked,

"Bābā, why do you look so sad?"

Śrī Rūpa Gosvāmī replied,

"I am searching for my Lord, Govindadeva, but I cannot find Him."

The boy smiled and said simply,

"Every day, a sacred cow comes to Gomā Ṭīlā. Without anyone milking her, she pours her milk upon one particular spot. Your Govindadeva is residing there."

Having spoken these words, the boy quietly departed.

After the mysterious boy disappeared, Śrī Rūpa Gosvāmī looked around in amazement—but the boy was nowhere to be seen. At that very moment, a divine realization awakened within his heart. This was no ordinary cowherd boy. It was Śrī Kṛṣṇa Himself, who had personally come to guide His devotee.

The following day, Śrī Rūpa Gosvāmī, accompanied by many Vrajavāsīs, went to Gomā Ṭīlā. Exactly as the boy had described, a sacred cow arrived and, without being milked by anyone, lovingly poured her milk upon one particular spot on the ground. The villagers immediately understood that this place was extraordinary.

Filled with reverence, they began excavating the site.

Within a short time, a wonderfully beautiful, effulgent, and enchanting Deity emerged from beneath the earth.

The moment Śrī Rūpa Gosvāmī beheld the Lord, tears streamed from his eyes.

Years of searching…

Countless heartfelt prayers…

Endless waiting…

All had reached their glorious fulfillment.

The Lord for whom he had wandered through every corner of Vraja had now personally revealed Himself before His loving devotee.

This divine Deity was none other than Śrī Govindadeva, one of the principal Deities originally established after the Dvāpara-yuga by Śrī Vajranābha, the great-grandson of Lord Śrī Kṛṣṇa. In the course of history, the Deity had been concealed beneath the earth to protect Him from invading forces. Now, by the desire of Śrī Caitanya Mahāprabhu and through the pure devotion of Śrī Rūpa Gosvāmī, the Lord once again manifested Himself for the benefit of His devotees.

The entire land of Vraja erupted in celebration.

Kīrtana resounded everywhere.

Temple bells rang joyfully.

Every heart overflowed with one realization:

The Lord is never truly lost. He simply waits for the moment when a sincere devotee begins searching for Him with humility and love.

When our search is free from pride and filled instead with genuine humility…

When our longing is motivated not by selfish desire but by the aspiration to serve…

This is the true meaning of the guidance of divine mercy.

The Service of Śrī Govindadeva

Abhidheya – Transforming Relationship into Loving Service

The name Govinda carries profound spiritual significance.

Among the countless names of Lord Kṛṣṇa, each reveals a unique aspect of His qualities, pastimes, and compassion. The name *Govinda* is especially rich in meaning.

The scriptures explain that the word "Go" refers to many things:

Cows
The senses
The Vedas
The Earth
Speech
All living beings

The word "Vinda" means one who gives joy, nourishes, protects, and satisfies.

Thus, Govinda is:

The giver of happiness to the cows.
The Lord who attracts our restless senses toward His divine beauty.
The sustainer of the entire Earth.
The ultimate goal of all the Vedas.
The One who fills the hearts of His devotees with divine love.

Therefore, the Brahma-saṁhitā glorifies Him with the immortal prayer:

Govindam ādi-puruṣaṁ tam ahaṁ bhajāmi.

"I worship Govinda, the original Supreme Person."

In the Gauḍīya Vaiṣṇava tradition, three Deities beautifully represent the complete journey of spiritual life:

Śrī Madana-mohana — *Sambandha* (our eternal relationship with the Lord)
Śrī Govindadeva — *Abhidheya* (the practice of devotional service)
Śrī Gopīnātha — *Prayojana* (the ultimate goal—pure love of Godhead)

As explained by Śrīla Jīva Gosvāmī and the previous ācāryas, every sincere seeker progresses through these three stages of spiritual realization. Following the appearance of Śrī Govindadeva, Śrī Rūpa Gosvāmī began serving the Lord with the utmost simplicity and devotion.

He possessed neither a magnificent temple nor ornaments of gold.

He had no army of servants or royal wealth.

What he did possess was far more precious—a heart overflowing with pure love for the Lord.

Every day he would personally gather fresh flowers, lovingly offer sacred Tulasī leaves, prepare offerings for the Lord, chant kīrtana, and spend long hours simply gazing upon the beautiful face of Śrī Govindadeva.

For him, devotional service was not a routine obligation or religious duty.

It was the very breath of his life.

While engaged in this intimate service, Śrī Rūpa Gosvāmī composed some of the greatest treasures of Gauḍīya Vaiṣṇava literature, including Bhakti-rasāmṛta-sindhu, Ujjvala-nīlamaṇi, Vidagdha-mādhava, and Lalita-mādhava.

It is said that every word flowing from his pen carried the inspiration and blessings of Śrī Govindadeva Himself.

The True Meaning of Service

Often, we think that service simply means performing some activity within a temple.

But the life of Śrī Rūpa Gosvāmī teaches us a much deeper truth.

Service does not begin with our hands.

It begins within the heart.

When food is lovingly prepared for the pleasure of the Lord—it becomes service.

When knowledge is written to glorify Him—it becomes service.

When music is sung only to delight Him—it becomes service.

When every thought, every action, and every moment of one’s life is dedicated to His pleasure—that is the true meaning of Abhidheya, the living practice of devotion.

Śrīmatī Rādhār’āṇīs Arrival in Vṛndāvana — A Cherished Temple Tradition

One of the most beautiful traditions associated with the worship of Śrī Govindadeva has been lovingly preserved by devotees for generations.

It is said that there was a time when Śrī Govindadeva was worshipped without a separate Deity of Śrīmatī Rādhārāṇī beside Him. The devotees longed to see the Divine Couple worshipped together, for how could the Lord of Vṛndāvana be complete without His eternal beloved?

According to an ancient temple tradition, at that time a beautiful Goddess Deity was being worshipped in the sacred temple of Lord Jagannātha in Purī. Many devotees revered Her as Mahālakṣmī.

One night, the Gajapati King of Purī received a remarkable dream.

The Divine Lady appeared before him and said:

“I am not Mahālakṣmī. I am Śrī Rādhā, the Queen of Vraja. My rightful place is beside My beloved Śrī Govindadeva in Vṛndāvana. Please take Me there.”

When the king awoke, he accepted the dream not as an ordinary vision, but as a divine instruction. With great reverence and royal honour, the sacred Deity was sent to Vṛndāvana.

When Śrīmatī Rādhārāṇī was finally installed beside Śrī Govindadeva, the devotees felt that the worship of the Divine Couple had attained its natural completeness. The sweetness of Vṛndāvana seemed to shine even more brightly.

Many years later, when the sacred Deities of Vṛndāvana were respectfully moved to safer places during a time of great turmoil, Śrīmatī Rādhārāṇī journeyed alongside Her beloved Govindadeva to Jaipur.

Even today, as devotees stand before the Divine Couple in Jaipur, this cherished tradition gently reminds them of an eternal truth:

Śrī Rādhā and Śrī Kṛṣṇa are never separated. Where Govindadeva is present, Śrī Rādh’ās love is eternally present. And wherever Śrī Rādhā is, the true sweetness of Vṛndāvana blossoms forever.

The Temple of Śrī Govindadeva

As the fame of Śrī Govindadeva spread across India, Vṛndāvana once again blossomed into a great center of devotion.

Kings, saints, scholars, and pilgrims from distant lands came to receive His darśana.

Among them was the great devotee Rāja Mān Siṅgh of Amber.

The moment he beheld Śrī Govindadeva, his heart overflowed with devotion.

He resolved:

“I shall build a temple for my Lord whose grandeur will proclaim to the world who truly reigns over Vṛndāvana.”

Toward the end of the sixteenth century, an extraordinary seven-storeyed temple of red sandstone was constructed.

It was regarded as one of the most magnificent temples in northern India.

Its architecture beautifully harmonized Indian, Rajasthani, and the finest elements of contemporary Mughal craftsmanship.

Pilgrims traveling from faraway places stood in awe at its breathtaking beauty.

Although only a portion of that majestic structure remains today, its surviving walls continue to silently testify to the devotion, vision, and spiritual grandeur of those who built it.

The Glory of Service, Not the Temple

The temple of Śrī Govindadeva was indeed magnificent.

Yet the Lord was not pleased because of its towering walls or carved stones.

He was pleased because every single stone had been placed with love.

The Lord does not require grand buildings.

He resides within the loving hearts of His devotees.

A magnificent temple becomes meaningful only when humble and heartfelt service continues to flourish within it.

Even today, many of us wish to serve the Lord.

Yet we often postpone our service, thinking:

"When I have more time…"

"When I have more wealth…"

"When I become more qualified…"

Śrī Govindadeva teaches a timeless lesson:

Service does not begin with favorable circumstances.

Service begins with surrender.

The Lord is not waiting for our resources.

He is waiting for our hearts.

The day we begin living solely for His pleasure, our own lives also become expressions of Abhidheya—loving devotional service in action.

Indeed, finding the Lord is wonderful—but even more important is living in such a way that the Lord Himself may lovingly say:

"This is My servant."

The Protection of Śrī Govind Dev Ji

When the Lord Journeyed to Protect the Love of His Devotees

In the latter half of the sixteenth century, Vrindavan had once again become a vibrant center of devotion. By the order of Śrī Chaitanya Mahaprabhu, the Six Goswamis had rediscovered the lost pastime places of Braj. The worship of Śrī Madan Mohan, Śrī Govind Dev, Śrī Gopinath, Śrī Radha Raman, and other divine Deities began once again with great reverence and grandeur. Kings, saints, scholars, and countless devotees from different parts of the country started coming to Vrindavan. The entire land of Braj once again resounded with the chanting of the holy names, kirtan, and devotion.

But history took a difficult turn.

During the reign of Aurangzeb, many ancient temples across northern India came under threat. In 1669 CE, orders were issued for the destruction of many prominent temples. Vrindavan was not spared from this crisis.

At that time, the greatest concern before the devotees was not the temples.

Their greatest concern was—

"How can we preserve the uninterrupted service of our Lord?"

Not the Protection of God, but the Protection of Service

The Lord is all-powerful. The Supreme Lord, who protects the entire universe, does not require anyone's protection.

But the nature of love is altogether different.

A mother protects her child.

Mother Yaśodā applies kajal to Krishna to protect Him from the evil eye.

The gopīs worry that a thorn may prick His lotus feet.

Similarly, a devotee does not protect God; rather, the devotee protects his service to God.

The Gauḍīya ācāryas explain that the Deity is not merely an idol of stone or metal. The Deity is the Lord Himself in His arcā-avatāra form, and it is the great fortune of the devotees to serve Him.

To ensure the continuity of this service, the temple servants and the Rajput protectors decided to move the original Deity to a safe place.

According to historical records, the original Deity of Śrī Govind Dev Ji was respectfully and carefully taken out of Vrindavan.

In this endeavor, the temple servants received the protection of the Kachwaha royal dynasty of Amber (present-day Jaipur).

This was not an act of fleeing.

It was an effort to protect the Lord’s service.

As the Lord’s Deity was being taken away from Vrindavan, the eyes of many devotees were filled with tears.

The Lord whose darshan had been the very foundation of their lives was now leaving the sacred land of Braj.

Yet deep within their hearts, they also held an unwavering faith—

“Wherever our Govind resides, there Vrindavan will also reside.”

From Kamyavan to Jaipur

Śrī Govind Dev Ji was not taken directly to Jaipur.

During the journey, He stayed for some time in Kamyavan and other secure places within Braj Mandal.

Later, when circumstances became favorable, He was taken to the kingdom of Amber.

When Maharaja Sawai Jai Singh II established the city of Jaipur, he respectfully installed Śrī Govind Dev Ji at the very center of the city.

Even today, the temple of Śrī Govind Dev Ji, situated near the City Palace of Jaipur, is regarded as one of the foremost Vaiṣṇava pilgrimage sites in Rajasthan.

The royal family never considered themselves the rulers of the kingdom.

They always accepted Lord Śrī Govind Dev Ji as the true sovereign and regarded themselves only as His servants.

This tradition continues to be observed with great reverence even today.

Vrindavan Still Belongs to Him

Although the original Deity now resides in Jaipur, Vrindavan has never become devoid of Him.

At the ancient Govind Dev Temple in Vrindavan, the worship of His representative (pratibhū) Deity continues with the same love, devotion, and Vaiṣṇava tradition.

Even today, when a devotee stands before the majestic remains of that magnificent temple, he does not merely see a structure of red sandstone.

He sees the austerities of Śrī Rūpa Goswami.

He remembers the miracle of Goma Ṭīlā.

He recalls the moment when the Lord personally revealed Himself before His devotee.

Śrīla A. C. Bhaktivedanta Swami Prabhupāda repeatedly emphasized that our entire spiritual life is about becoming Rūpānuga—that is, following in the footsteps of Śrī Rūpa Goswami.

And wherever Śrī Rūpa Goswami is, there his worshipable Lord, Śrī Govind Dev, is also present.

Thus, Śrī Govind Dev is not merely a historical Deity.

He is the very heart of the entire Rūpānuga Gauḍīya tradition.

He teaches us that the Lord’s mercy is not limited to receiving His darshan.

He also teaches us to walk the path of service, spiritual practice, and divine love.

A Message for Our Lives

We all wish to attain the Lord.

But do we also wish to serve Him?

Śrī Govind Dev Ji reminds us that devotion is not merely about visiting a temple and taking darshan.

The true meaning of bhakti is—

To dedicate every thought, every action, and every breath of our lives for the pleasure of the Lord.

When service becomes our very nature, the Lord Himself begins to guide our lives.

“The simplest path to attain the Lord is to surrender oneself in His service.”

"Where there is service, there is Govind."

Bhagavad-gītā 18.55

bhaktyā mām abhijānāti yāvān yaś cāsmi tattvataḥ
tato māṁ tattvato jñātvā viśate tad-anantaram

"Only by devotion can I be truly known as I am. And upon knowing Me in truth, the devotee attains My eternal abode."

Abhidheya — The Guidance of Divine Mercy

Śrī Śrī Govind Dev Ji teaches us that the Lord is not only our worshipable Deity; He is also our guide. He calls us to His lotus feet, teaches us the path of service, and when we lovingly surrender unto Him, He makes our lives a part of His own divine pastimes.
O Śrī Govind Dev!
Just as You personally revealed the path to Śrī Rūpa Goswami, please remove the darkness of ignorance from our lives as well.
Bless us with a heart that longs not only for Your darshan, but also for Your service.
May our every thought, every action, and every breath become dedicated to the service of Your lotus feet.
This alone is the greatest perfection of our lives.

The Divine Secrets of Śrī Govind Dev Ji

Did you know?

- According to the Gauḍīya Vaiṣṇava tradition, the original Deity of Śrī Govind Dev Ji is one of the three principal Deities established by Lord Kṛṣṇa's great-grandson, Śrī Vajranābha, after the Dvāpara-yuga.
- Śrī Rūpa Goswami did not attain the Lord through his own intelligence, but through his humble prayers and the Lord's mercy.
- The place where Śrī Govind Dev Ji manifested is today known as Goma Ṭīlā.
- The seven-storeyed temple built by Raja Man Singh was regarded as one of the most magnificent works of religious architecture in India during its time.
- Today, the original Deity resides in Jaipur, while the daily worship of His representative (pratibhū) Deity continues in Vrindavan.
- In Gauḍīya philosophy, Śrī Govind Dev Ji is the presiding Lord of Abhidheya—the Lord who teaches us how to lovingly render devotional service unto Him.

If Śrī Govind Dev Ji Were to Say Something to Us Today…

"Do not worry about searching for Me.
Instead, make your life worthy of My service.
When the desire for sincere service awakens within your heart,
I Myself will bring you to Me."

When Śrī Govind Dev Ji Personally Had His Commentary Written

The Lord does not only protect His devotees…
When the time comes, He also protects His philosophy and His disciplic tradition.
One such wonderful pastime is connected with the service of Śrī Śrī Govind Dev Ji.
When the authenticity of the Gauḍīya Vaiṣṇava sampradāya was questioned and a commentary on the Vedānta-sūtra was demanded, Śrīla Viśvanātha Cakravartī Ṭhākura sent his disciple, Śrī Baladeva Vidyābhūṣaṇa, to Jaipur.
Śrī Baladeva Vidyābhūṣaṇa approached Śrī Śrī Govind Dev Ji not with the pride of a scholar, but as a humble servant, offering prayers at His lotus feet.
That night, Śrī Govind Dev Ji appeared to him in a dream and assured him:

"You write… I Myself shall tell you what to write."

By the Lord's mercy, the Govinda-bhāṣya was completed within only a few days. When the commentary was presented before the assembly of scholars, all objections were naturally silenced, and the Gauḍīya Vaiṣṇava sampradāya was accepted as an authentic Vaiṣṇava tradition.
Even today, the Govinda-bhāṣya is not merely a great philosophical work…
It stands as an eternal testimony to the truth that when a devotee takes complete shelter of the Lord with full surrender, the Lord Himself protects His philosophy, His devotees, and His mission through that devotee.

Close your eyes for a few moments.
Imagine—
You are standing upon Goma Ṭīlā in Vrindavan.
It is early morning.
A gentle breeze is flowing from the Yamunā.
A sacred cow peacefully approaches and offers her milk upon the earth.
Within the earth, the Lord is present…
And Śrī Rūpa Goswami stands there with folded hands.
A few moments later, the Lord personally manifests Himself.
Now experience yourself standing among that gathering…
And silently pray within your heart—

"O Govind! Just as You revealed the path to Śrī Rūpa Goswami, please guide the path of my life as well."

An Inspiration for Our Lives

Today, most of us seek blessings from the Lord.
But Śrī Govind Dev teaches us a higher prayer.
Do not simply say—

"Lord, please remove my problems."

Instead, pray—

“Lord, please make me such that I may live only for Your pleasure.”
When our priorities change,

the Lord’s mercy also begins to manifest in a new way.

Prayer

O Śrī Govind Dev!
May every day of my life be spent in Your service.
May my thoughts be pure.
May my words be gentle.
May my actions be offered at Your lotus feet.
Please bless me with a heart that seeks not the world,
but only Your pleasure.
Just as You accepted Śrī Rūpa Goswami, kindly make me too a small instrument of Your service.

Śrī Śrī Govind Dev Ji reminds us that the path to the Lord is not opened merely through knowledge or personal endeavor. When a sincere longing for selfless service awakens within the heart, the Lord Himself, through the guru, the scriptures, His devotees, and His divine Deity form, takes us by the hand and leads us to His lotus feet.